भारत के
महान वैज्ञानिक
शुभंकर मिश्र

भारत के महान वैज्ञानिक

शुभंकर मिश्र

लेखश्री पब्लिकेशन
सी-4/एस-2, ईस्ट ज्योति नगर
शाहदरा, दिल्ली-110093

परमपूज्यनीया माँ

श्रीमती त्रिपुरा मिश्र

एवं

परमादरणीय पिता

श्री तारा कांत मिश्र

को

ISBN : 978-81-905379-3-3

लेखश्री पब्लिकेशन

सी-4/एस-2, ईस्ट ज्योति नगर, शाहदरा,

दिल्ली-110093

द्वारा प्रकाशित

संस्करण : 2011

मूल्य : 60.00

जयभारत प्रिंटिंग प्रेस, शाहदरा, दिल्ली-110032

द्वारा मुद्रित

लेखश्री पब्लिकेशन, वाणी प्रकाशन की सहयोगी संस्था

भारत के महान वैज्ञानिक

कहाँ क्या है?

डॉ. जगदीश चंद्र बोस

डॉ. जगदीश चंद्र बोस विश्व के पहले ऐसे वैज्ञानिक थे जिन्होंने दुनिया को सर्वप्रथम बताया कि पेड़-पौधे और धातुओं में भी संवेदना होती हैं। उनके इस सिद्धांत से वनस्पति विज्ञान के क्षेत्र में चिंतन के एक नये अध्याय की शुरूआत हुई।

डॉ. जगदीश चंद्र बोस का जन्म 30 नवम्बर 1858 ईसवी को ढाका के राढ़ीखाल नामक गाँव में हुआ। जगदीश के पिता अंग्रेज़ सरकार में डिप्टी कलेक्टर थे। अतः इनका लालन-पालन बड़े शानो-शौकत के साथ किया गया। पिता बाबू भगवान चंद्र बोस एक चरित्रवान, निर्भीक और धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। उनकी माता भी सरल स्वभाव वाली एक सुसंस्कृत घरेलू महिला थी। पिता एवं माता के इस सरल एवं सहज स्वभाव का बालक जगदीश पर काफी दूरगामी प्रभाव पड़ा। वे बचपन से ही एक गंभीर प्रकृति के बालक थे।

बालक जगदीश की आरंभिक शिक्षा गाँव के ही एक पाठशाला में हुई। उनके पिता चाहते थे कि उनका बेटा अंग्रेज़ी शिक्षा के उद्देश्यों के विपरीत प्रकृति से प्रेम करना सीखे एवं अपने गरीब सहपाठियों के

प्रति सरल व सहज भाव रखे। सचमुच, अपने पिता के इच्छा के अनुरूप ही जगदीश बचपन से ही सभ्य एवं सुसंस्कृत बालक के रूप में जाने जाते थे।

गाँव की आरंभिक शिक्षा समाप्त करने के बाद उनके पिता ने उन्हें आगे की शिक्षा प्राप्त करने के लिए कलकत्ता भेजा। वहाँ जगदीश ने सेंट जेवियर स्कूल में दाखिला लिया और वहीं से उन्होंने बी.ए. की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की।

उन दिनों अपने देश में विज्ञान में उच्च अध्ययन के लिए कोई समुचित व्यवस्था नहीं थी। अतः जब जगदीश ने विज्ञान में उच्च डिग्री अर्जित करने के लिए इगलैंड जाने की अपनी इच्छा पिता को बताई तो उनके पिता इस बात के लिए सहर्ष तैयार हो गए।

इगलैंड जाकर छात्र जगदीश ने लंदन मेडिकल कॉलेज में प्रवेश लिया। वहाँ उन्होंने भौतिकी, रसायन विज्ञान आदि का अध्ययन शुरू किया। पर दुर्भाग्य से जगदीश अपनी शारीरिक अस्वस्थता के कारण लंदन में अधिक दिनों तक नहीं रह पाए। उन्हें मजबूर होकर अपनी डॉक्टरी की पढ़ाई अधूरी छोड़नी पड़ी। उन्हें शीघ्र ही स्वदेश लौटना पड़ा। पर कुछ ही वर्षों बाद उन्होंने पुनः कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में दाखिला लिया। यहाँ उन्होंने प्रकृति-विज्ञान का विशेष अध्ययन किया।

उन दिनों विद्युत चुबंकीय तरंगों को लेकर वैज्ञानिक क्षेत्र में काफी हलचल मची थी। वैज्ञानिक इन तरंगों के गुणों के अध्ययन में जुटे थे। वे इन तरंगों के माध्यम से एक जगह से दूसरी जगह संदेश भेजने की संभावना पर विचार कर रहे थे। वैज्ञानिक बोस का भी ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ। वे बेतार के द्वारा संदेश भेजने की युक्ति ढूढ़ निकालने में सफल रहे।

पर इसे वैज्ञानिकों के समाज में मान्यता मिलना इतना आसान कहाँ? क्योंकि बोस पराधीन भारत के एक नागरिक जो ठहरे। इटली के एक वैज्ञानिक प्रो. मारकोनी इस क्षेत्र में बाजी मार गये। आज लोग मारकोनी को ही बेतार के अविष्कारक के रूप में जानते हैं।

कहते हैं कि कण-कण में भगवान मौजूद हैं। हमारे वेदों और उपनिषदों में भी यही कहा गया है। यहाँ जड़ और चेतन के बीच कोई भेदभाव नहीं बताया गया है। पर लोग धीरे-धीरे इसे भूलते चले गए। जड़ को अचेतन माना जाने लगा। जगदीश चंद्र बोस ने प्राचीन इस विस्मृत ज्ञान को एक बार पुनः वैज्ञानिक मंच पर उठाया और अपने प्रयोगों द्वारा यह प्रमाणित कर दिया कि पेड़-पौधे में भी जीवन हैं। उन्हें भी हम प्राणियों जैसे ही सर्दी-गर्मी व भूख-प्यास आदि लगती हैं। वे भी हमारी तरह सुख-दुख की अनुभूति रखते हैं। वे भी आराम करते हैं और अंत में मनुष्यवत ही मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

डॉ. बोस का शोध ग्रंथ-'रिस्पांस इन दि लिविंग एंड नान लिविंग' जब प्रकाशित हुआ तो संपूर्ण विश्व में मानो हलचल मच गई। वैज्ञानिकों को सहसा इनकी बातों पर यकीन ही नहीं हो पा रहा था। लंदन के रायल सोसाइटी में इनके प्रयोग को देखने के लिए भारी भीड़ इकट्ठी हुई। डॉ. बोस ने यहाँ अपने प्रयोग को पुनः दुहराया। उन्होंने 'मैग्नेटिक कैस्कोग्राफ' द्वारा यह एक बार फिर सफलतापूर्वक प्रदर्शित कर दिया कि पेड़-पौधे में भी जीवन है। उनका यह प्रयोग त्रुटिरहित साबित हुआ। उन्होंने दिखाया कि विष-पान करने से जैसे मनुष्य के हृदय की धड़कन रूक जाती है वैसे ही यह वनस्पतियों के साथ भी घटता है। चीनी के घोल को वनस्पति की शिराओं में प्रवेश करवाने पर इनकी पत्तियाँ उठ जाती हैं। इस प्रयोग से वैज्ञानिक समुदाय में उनकी वाहवाही होने लगी। वे विश्वविख्यात हो गए।

डॉ. बोस आजीवन अपनी विज्ञान साधना में लगे रहे। अपने अंतिम दिनों में उन्होंने और भी कई महत्त्वपूर्ण खोज़े की। रामायण में वर्णित 'संजीवनी बूटी' पर भी उन्होंने कई वैज्ञानिक अनुसंधान किए। इसमें भी वे सफल रहे। हिमालय पर्वत पर पाई जाने वाली ऐसी ही एक बूटी के रस से उन्होंने मृतप्राय पौधों को फिर से जीवित कर दिखाया।

डॉ. बोस सच्चे अर्थों में एक सफल तथ्यान्वेषक थे। उन्होंने देश में विज्ञान के प्रचार-प्रसार के लिए एक विज्ञान मंदिर नामक संस्था की भी स्थापना की। यह संस्था देश के एक प्रमुख शोध-संस्थान के रूप में मानी जाती है। इसमें वैज्ञानिकों-विद्यार्थियों के लिए शोध संबंधी सभी आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

23 नवबंर सन् 1937 ईसवीं में इस महान वैज्ञानिक का देहावसान हो गया।

डॉ. जगदीश चंद्र बोस सही अर्थों में वनस्पति विज्ञान के एक चमकीला सितारा हैं। उनकी मौलिकता, विलक्षणता व विविधता आज भी अद्वितीय मानी जाती है।

□□□

आचार्य प्रफुल्ल चंद्र रे

भारत के अग्रणी वैज्ञानिकों में डॉ. प्रफुल्ल चंद्र रे का नाम बड़े ही आदर से लिया जाता है। वे एक महान रसायन शास्त्री थे। उन्होंने अपना सारा जीवन रसायन शास्त्र के अभिनव प्रयोगों में उत्सर्ग कर दिया। आपने भारत में अनेक रसायन संबंधी उद्योगों की स्थापना कर भारतीय उद्योग-धंधे की प्रगति को शीर्ष पर पहुँचाया।

इस महान वैज्ञानिक का जन्म 02 अगस्त 1861 ईसवीं को बंगाल के खुलना जिले में हुआ था। 'ररूली कतिपरा' नामक गाँव को इस महान वैज्ञानिक के जन्मस्थान होने का गौरव प्राप्त है।

बालक प्रफुल्ल के पिता श्री हरिश्चंद्र रे बड़े ही सरल एवं सहज स्वभाव के व्यक्ति थे। वे फारसी के प्रतिष्ठित विद्वान थे। उनका पूरा परिवार समाज सेवा जैसे पवित्र कार्यों में हमेशा लगा रहता था। उन्होंने फारसी एवं अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए अपने गाँव में ही एक मॉडल स्कूल खोला था। बालक प्रफुल्ल की आरंभिक शिक्षा भी इसी स्कूल में संपन्न हुई थी। विशुद्ध ग्रामीण वातावरण में मिली शिक्षा से प्रफुल्ल के जीवन में भी सरलता एवं सहजता आ गई थी। घमंड ने तो उसे छुआ तक न था।

गाँव के स्कूल से अपनी प्रारंभिक शिक्षा पूरी करने के पश्चात वे आगे की पढ़ाई के लिए कलकत्ता गये। वहाँ इनका दाखिला प्रतिष्ठित हेअर स्कूल में करवाया गया। यह हेअर स्कूल की ही शिक्षा का परिणाम था कि बालक प्रफुल्ल की रूचि, वैज्ञानिक विषयों की तरफ उत्पन्न होने लगी। दुर्भाग्य से प्रफुल्ल अपनी शारीरिक अस्वस्थता के कारण हेअर स्कूल में ज्यादा दिनों तक नहीं रह पाए। उन्हें अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड़नी पड़ी। वे कई वर्षो तक बीमार रहे। बाद में स्वस्थ होने पर प्रफुल्ल को एल्बर्ट स्कूल में प्रवेश दिलवाया गया।

कॉलेज की शिक्षा प्रफुल्ल ने मेट्रोपालिटन इंस्टीट्यूट में ग्रहण की। यहाँ वे सुरेंद्रनाथ बनर्जी, आनंद मोहन बसु और केशव चंद्र सेन जैसे व्यक्तित्व के संपर्क में आए। यही कारण था कि किशोरावस्था से ही देश-प्रेम की भावना मानों उनमें कूट-कूटकर भर गई थी।

युवा प्रफुल्ल एक मेधावी छात्र थे। विज्ञान विषयों के अलावा वे विभिन्न भाषाओं को सीखने के लिए भी उत्सुक रहते थे। रसायन शास्त्र के अध्ययन के अलावा उनके पास जो थोड़ा-बहुत समय बचता था उसका सदुपयोग करते हुए उन्होंने कई विदेशी भाषाएँ जैसे-लैटिन, फ्रेंच आदि सीखी। इसके अतिरिक्त वे संस्कृत प्रेमी भी थे। उन्होंने एफ.ए. (इंटरमीडिएट) की परीक्षा के वैकल्पिक विषयों में एक पर्चा संस्कृत का भी रखा था। उन्होंने इस समय तक संस्कृत के अनेक ग्रंथों जैसे-कुमार संभवभ्, भट्टिकाव्य आदि का आधोपांत अध्ययन भी कर लिया था।

प्रफुल्ल का यह संस्कृत ज्ञान आगे चलकर उनके लिए काफी उपयोगी साबित हुआ। प्रायः ऐसा विरले ही होता है कि कोई विज्ञानवेत्ता संस्कृत के भी ज्ञाता हों। प्रफुल्ल ने अपनी इस खूबी का उपयोग भारतीय ज्ञान-विज्ञान की विशिष्टताओं को दुनिया के सामने

प्रदर्शित करने में किया। उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि प्राचीन काल का भारत ज्ञान-विज्ञान में दुनिया के अन्य देशों से काफी आगे था।

अपनी पढ़ाई पूरी करने के बाद डॉ. रे कलकत्ता के प्रेसीडेंसी कॉलेज में रसायन शास्त्र के प्राध्यापक बने। वहाँ वे डॉ. जगदीश चंद्र बोस के संपर्क में आए। डॉ. बोस के सान्निध्य ने रे की वैज्ञानिक साधना की मानो दशा और दिशा ही बदल दी। वे अपने शोधकार्यों में इस कदर डूब गए कि उन्हें बाहरी दुनिया का कोई ख्याल ही नहीं रहा। प्रेसीडेंसी कॉलेज में अध्यापन के समय में ही उन्होंने एक पुस्तक-'प्रेसीडेंसी कॉलेज में रसायन के अनुशीलन कार्य' नाम से लिखी। इस पुस्तक के प्रकाशन से लोग उनकी वैज्ञानिक गतिविधियों से अवगत होने लगे। उनकी गणना अच्छे वैज्ञानिकों के रूप में होने लगी।

डॉ. रे ने भारतीय ज्ञान-विज्ञान की उदात्त परंपरा को दुनिया के सामने लाते हुए 'हिंदू रसायन का इतिहास' नामक एक पुस्तक भी लिखी है। इस पुस्तक में भारत के प्राचीन ऋषियों के उदात्त चिंतन को सिलसिलेवार ढंग से प्रस्तुत करने का एक सफल प्रयास किया गया है।

डॉ. प्रफुल्ल चंद्र रे ने पारद के विभिन्न यौगिकों की खोज की थी। उन्होंने 'पारद नाइट्राईट-मरक्यूरस-नाइट्राईट' नामक यौगिक को खोजा था। उनकी इस वैज्ञानिक उपलब्धि की अपने देश में ही नहीं, बल्कि विदेशों में भी काफी सराहना हुई। उनके दर्जनों मौलिक शोध पत्र विभिन्न प्रतिष्ठित वैज्ञानिक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। इसके अलावा रसायन शास्त्र के क्षेत्र में उनकी और भी कई महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ रही है। उन्होंने प्लेटिनमम गंधक और पारद आदि के संयोग से बनने वाले यौगिकों पर अपने कई सफल शोध

किए।

डॉ. प्रफुल्ल चंद्र रे का देहावसान 06 जुलाई 1944 में हुआ। इस समय उनकी उम्र 83 वर्ष की थी।

डॉ. प्रफुल्ल चंद्र रे हालांकि अब हमारे बीच नहीं है परंतु अपनी समाज सेवा एवं महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक उपलब्धियों के कारण वे आज भी भारतीय जनमानस के द्वारा विशेष श्रद्धा और सम्मान से याद किए जाते हैं। उनका उज्ज्वल व्यक्तित्व हमारे लिए किसी प्रेरणा स्रोत से कम नहीं है।

□□□

श्रीनिवास रामानुजन

श्रीनिवास रामानुजन एक असाधारण प्रतिभा के व्यक्ति थे। उनकी गणना एक महान गणितज्ञ के रूप में की जाती है। 27 वर्ष की छोटी सी उम्र में ही उन्होंने 'विशुद्ध गणित' के कई गंभीर सिद्धांतों के प्रतिपादन कर डाले। इससे युवा रामानुजन की चर्चा दूर-सुदूर देशों में होने लगी थी।

डॉ. रामानुजन का शोध, गणित के 'संख्या सिद्धांत' (theory of numbers) से संबंधित रहा है। उन्होंने इस सिद्धांत के अन्तर्गत विभिन्न संख्याओं के गुणधर्मों के बारे में विवेचन किया है। गणित के क्षेत्र में किए गए उनके इस अध्ययन ने मानों क्रांति ही ला दी।

रामानुजन का बचपन विपन्नता में बीता था। वे एक गरीब ब्राह्मण परिवार में पैदा हुए थे। उनका जन्म मद्रास के 'इरोद' नामक एक छोटे से गाँव में हुआ था। 'इरोद' श्री रामानुजन का ननिहाल था। उनका पैतृक स्थान 'कुंभकोणम्' था।

रामानुजन के पिता एक रूढ़िवादी कुलीन ब्राह्मण थे। वे अपने गाँव कुंभकोणम में ही एक कपड़े के व्यापारी के यहाँ मुनीम का काम करते थे। इस नौकरी से होने वाली आय परिवार के भरण-पोषण के

लिए पर्याप्त नहीं थी। अतः ज़ाहिर है कि रामानुजन का बचपन अभावों में बीता होगा।

बचपन से ही बालक रामानुजन बिल्कुल शांत एवं चिंतनशील प्रकृति के थे। पाँच वर्ष की अवस्था में उन्हें गाँव की ही पाठशाला में पढ़ने के लिए भेजा गया। आरंभिक पढ़ाई समाप्त होने के बाद उन्हें पास के ही हाईस्कूल में भेजा गया। रामानुजन की प्रतिभा से स्कूल के सभी अध्यापक उनसे विशेष स्नेह रखते थे। पर यहाँ भी उनके शांत एवं चिंतनशील स्वभाव में कोई परिवर्तन नहीं आया। वे प्रायः चुप-चुप ही रहते। यहाँ तक कि सहपाठियों से भी वे घुलने-मिलने से कतराते नहीं थे।

रामानुजन का शुरू से ही गणित के प्रति एक विशेष लगाव था। वे हमेशा गणित की पहेलियों एवं गुत्थियों को सुलझाने में लगे रहते थे। उन्हें हमेशा किताबों में लगे रहते देखकर उनके सहपाठी उनसे चिढ़ने लगे थे। वे रामानुजन को सनकी समझते थे। अध्यापक भी कई बार रामानुजन के द्वारा पूछे गए प्रश्नों की गंभीरता नहीं समझ पाते थे। वे कई बार उनके प्रश्नों को बेतुका कहकर टाल देते थे। उस समय उनके अध्यापक और सहपाठियों को इस बात का अदांजा कतई नहीं था कि गुमसुम व बेतुके प्रश्न पूछने वाला यह बालक आगे चलकर इस देश का नाम रोशन करेगा।

रामानुजन एक महान गणितज्ञ के रूप में जाने जाते हैं। उन्होंने 12 वर्ष की छोटी सी आयु में ही बी.ए. स्तर के त्रिकोणमिति के कई गंभीर प्रश्न, बातों ही बातों में हल कर डाले थे। गणित के इतिहास में श्रीरामानुजन का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा गया है।

रामानुजन के परिवार की माली हालत अच्छी नहीं होने के कारण उन्हें अपनी पढ़ाई पूरी करने में कई अड़चने आती रहीं। फिर छोटी

सी उम्र में ही उनकी शादी भी कर दी गई। रामानुजन के लिए यह आर्थिक संकट एक चुनौती बन गई। उन्हें इससे मुकाबला करने के लिए कई छोटी-मोटी नौकरियाँ करनी पड़ी।

पर कहते हैं कि जहाँ चाह हैं वहाँ राह भी। रामानुजन ने इन सब विपरीत परिस्थितियों का सामना करते हुए अपने गणित संबंधी अनुसंधान को ज़ारी रखा। अब तक उन्होंने गणित के कई महत्त्वपूर्ण गुत्थियों के समाधान ढूढ़ निकाले थे। यह एक असाधारण कार्य था। गणित के बड़े-बड़े विद्वान भी इनसे पहले इन गुत्थियों के हल ढूढ़ने में सफल नहीं हो पाए थे। रामानुजन की चर्चा दूर-दूर तक होने लगी। गणित के विद्वान भी उनके कार्यो को अब स्वीकार करने लग गए थे। उनके शोध-लेख, विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगे। उनका ऐसा ही एक शोध लेख 'बरनौली की संख्याओं के कुछ गुण' शीर्षक से गणित की एक प्रतिष्ठित पत्रिका में सन् 1911 ई. में प्रकाशित हुआ। इस निबंध के प्रकाशन से ही वे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के विद्वान बन गए। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उनकी प्रतिभा का सम्मान होने लगा। लोग उनकी बुद्धि का लोहा मानने लगे थे।

अब उनकी आर्थिक तंगी भी जाती रही। मद्रास विश्वविद्यालय की तरफ से उनके इस महत्त्वपूर्ण कार्यो को देखते हुए उन्हें एक प्रतिष्ठित छात्रवृत्ति मिलने लगी। उन दिनों रामानुजन एक बंदरगाह में क्लर्क की नौकरी कर रहे थे। मद्रास विश्वविद्यालय की इस छात्रवृत्ति ने मानों उनके जीवन की दशा और दिशा ही बदल दी। उन्होंने क्लर्क की नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और अपना सारा समय गणित की गूढ़ समस्याओं को सुलझाने में लगा दिया। इसके बाद से उनका शेष जीवन गणित के अनुशीलन में ही व्यतीत हुआ।

इसी बीच श्री रामानुजन इंगलैंड के ट्रिनिटी कॉलेज के फैलो व

सुप्रसिद्ध गणितज्ञ डॉ. एच. हार्डी के संपर्क में आए। डॉ. हार्डी रामानुजन की प्रतिभा से अत्यंत प्रभावित हुए। वे उन्हें इगलैंड बुलाना चाहते थे।

रामानुजन की स्वयं की भी इच्छा थी कि वे उच्च अध्ययन व अनुसंधान आदि कार्यो के लिए इगलैंड जाएं। डॉ. हार्डी के इस आमंत्रण ने मानो उनके मन की मुरादें पूरी कर दी। डॉ. रामानुजन इगलैंड सरकार की छात्रवृत्ति पर सन् 1914 से सन् 1917 तक इगलैंड में ही रहे। इगलैंड में अपने अध्ययन के दौरान रामानुजन ने गणित संबंधी अनेक मौलिक कार्य किए। उनके इस महत्त्वपूर्ण उपलब्धि को देखते हुए इंगलैंड की प्रसिद्ध वैज्ञानिक संस्था 'रायल सोसाइटी' ने उन्हें अपना फैलो मनोनीत किया। देखा जाए तो इतनी छोटी सी उम्र में ऐसी ऊँची प्रतिष्ठा अपने देश के कम ही वैज्ञानिकों को नसीब हुआ है। रामानुजन दूसरे भारतीय व्यक्ति थे जिन्हें इस प्रतिष्ठित सम्मान से अलंकृत किया गया था। इससे पहले यह सम्मान अर्देशर कर्सेटजी (1808-1877) को प्राप्त हुआ था। वे एक भारतीय-पारसी थे और पेशे से इंजीनियर थे।

रामानुजन का जीवन बड़ा ही सरल था। वे सादा जीवन उच्च विचार के समर्थक थे। धनसंचय एवं आमोद-प्रमोद की तरफ तो वे लेशमात्र भी आकर्षित नहीं हो पाए थे। उनके विनम्र स्वभाव की सर्वत्र तारीफ होती थी। उनका संपूर्ण व्यक्तित्व प्रभावी व आकर्षक था।

सन् 1919 में रामानुजन इगलैंड से स्वदेश लौटे। इस बीच शारीरिक अस्वस्थता के कारण वे कृशकाय हो गए थे। सभी संभव उपचारों के बावजूद भी उनकी हालत दिन पर दिन बिगड़ती ही जा रही थी। 26 अप्रैल 1920 ई. को यह महामानव हमें छोड़कर चला गया।

डॉ. श्रीरामानुजन के गणित संबंधी शोध विद्वानों की नज़र में सर्वथा मौलिक एवं अद्‌भुत थे। ये आज भी मील के पत्थर माने जाते हैं। कहा जाता है कि रामानुजन का जीवन यदि निर्धनता से मुक्त रहता तो निःसंदेह गणित के क्षेत्र में और भी अधिक प्रगति हुई होती।

सचमुच डॉ. श्रीरामानुजन भारत के एक महान गणितज्ञ थे। उनकी प्रतिभा के तेजपुंज से हम आज भी आलोकित हो रहे हैं।

□□□

डॉ. चंद्रशेखर वेंकट रमण

आदिकाल से ही भारत ऋषियों, मुनियों व महापुरुषों का देश रहा है। प्राचीन काल से लेकर अब तक सैकड़ों महापुरुष इस पावन धरती पर आए और अपनी आभा बिखेरकर हमें ज्ञान से आलोकित करते रहे। ऐसे महापुरुषों की श्रेणी में डॉ. चंद्रशेखर वेंकट रमण का नाम बड़े ही आदर और श्रद्धा से लिया जाता है।

डॉ. वेंकट रमण एक प्रसिद्ध भौतिक विज्ञानी थे। उन्हें अपने मौलिक वैज्ञानिक कार्यों के लिए सन् 1930 में नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। इसके साथ ही भारत की अंग्रेज़ी सरकार ने आपको 'सर' की उपाधि भी प्रदान की थी। स्वतंत्रता के पश्चात राष्ट्र के पुनर्निर्माण एवं उत्थान में आपके बेशकीमती योगदान को देखते हुए स्वदेशी सरकार ने 'भारत रत्न' के सर्वोच्च नागरिक सम्मान से आपको विभूषित किया।

चंद्रशेखर वेंकट रमण का जन्म 07 नवम्बर सन् 1888 को त्रिचनापल्ली नगर के समीप बसे तिरुवालैक्ववाल गाँव में एक जमीदार परिवार में हुआ था।

आपके पिता श्री चंद्रशेखर अय्यर हालाँकि एक धर्मनिष्ठ ब्राह्मण थे, परन्तु फिर भी वे अपना पैतृक गाँव छोड़कर शहर में आकर बस गए थे। इतना ही नहीं वे तत्कालीन मान्यताओं के विरूद्ध अंग्रेज़ी शिक्षा के भी पक्षधर थे। उन दिनों की सामाजिक मान्यता में विदेश गमन और अंग्रेज़ी अध्ययन पापतुल्य समझे जाते थे।

वेंकट रमण के जन्म के समय उनके पिता एक हाईस्कूल में अंग्रेज़ी के अध्यापक थे। वेंकट रमण की माता श्रीमती पार्वती अम्मल त्रिचनापल्ली के एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण परिवार की कन्या थी। माता पार्वती अम्मल स्वयं भी एक पढ़ी-लिखी स्त्री थी। उनकी प्रतिष्ठा समाज में संस्कृत की एक परम विदुषी के रूप में थी। विनम्रता, धैर्य तथा पारिवारिक मर्यादा की भावना उनमें कूट-कूट कर भरी थी।

बालक रमण पर अपने इस पारिवारिक संस्कार का गहरा प्रभाव पड़ा। बालक रमन को जो उच्च कोटि का शैक्षिक और सांस्कृतिक परिवेश मिला उनसे आगे चलकर उन्हें अपने व्यक्तित्व को सँवारने में काफी मदद मिली। उन्होंने न केवल ज्ञान-विज्ञान में अपनी महारत हासिल की बल्कि संगीत की विभिन्न विधाओं में भी अपनी कुशलता अर्जित की। उन्होंने आगे चलकर संगीत, वीणा और मृदंग आदि से संबंधित अनेक रोचक वैज्ञानिक अनुसंधान भी किए।

बचपन से ही चंद्रशेखर वेंकट रमण एक कुशाग्र बुद्धि के बालक थे। उनकी पढ़ाई-लिखाई में अत्यंत रूचि थी। वे इन कार्यों में कई बार इतने मशगूल हो जाते थे कि खाने-पीने की उन्हें कोई सुध ही नहीं रहती थी। इस अनियमितता की वजह से वे कई बार बीमार भी पड़ जाते थे। यह बीमारी उनकी पढ़ाई में जब-तब विघ्न डालती रहती थी। पर इसके बावजूद रमन की पढ़ाई-लिखाई की गति ज्यों की त्यों

बनी रही। उन्होंने 12 वर्ष की छोटी सी आयु में ही मैट्रिककुलेशन की परीक्षा अच्छे अंकों से उत्तीर्ण कर ली थी। इसी प्रकार वे आगे भी एफ. ए. (इंटरमीडिएट) एवं विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में भी अव्वल रहे। मद्रास के प्रेसीडेंसी कॉलेज में छात्र व अध्यापक उनकी इस अद्‌भुत प्रतिभा के कायल थे। उनके इस विलक्षण प्रतिभा को देखते हुए मद्रास सरकार ने उन्हें आगे की पढ़ाई के लिए इगलैंड भेजने का विचार किया। पर यह दुर्भाग्य ही था कि विदेश जाने के समय की जानेवाली अनिवार्य डॉक्टरी परीक्षण में उन्हें छाँट दिया गया। डॉक्टरों की राय में रमण शारीरिक दृष्टि से कमज़ोर थे और इंगलैंड की सर्दी एवं लंबी समुद्री यात्रा से उनकी जान को खतरा हो सकता था।

विलायत नहीं जा पाने की वजह से रमण को आघात तो जरूर पहुँचा पर फिर भी वे हिम्मत नहीं हारे। उन्होंने स्वदेश में रहकर ही कुछ करने की ठानी। वे राजकीय उच्च सेवा की प्रतियोगिता परीक्षा की तैयारी करने लगे। इस परीक्षा के लिए उन्होंने साहित्य, इतिहास, राजनीति विज्ञान एवं संस्कृत का गंभीर अध्ययन किया। जल्दी ही उनकी मेहनत रंग लाई। वे इस परीक्षा में सफल घोषित किए गए। उन्हें भारत सरकार के आर्थिक विभाग में डिप्टी डायरेक्टर जनरल के पद पर नियुक्त किया गया।

परन्तु विज्ञान के प्रेमी को भला इस राजकीय सेवा के कार्यों में संतुष्टि कहाँ? वे तो विज्ञान की उपासना में लगना चाहते थे। अतः जैसे ही उन्हें कलकत्ता विश्वविद्यालय में भौतिक-विज्ञान पढ़ाने का अवसर मिला, तो उन्होंने आनन-फानन में अपनी लेखा संबंधी भारत सरकार की उस नौकरी से त्याग पत्र दे दिया।

इस समय रमण की उम्र यही कोई पच्चीस वर्ष की थी।

मनोनुकूल नौकरी मिलते ही वे बड़े उत्साह एवं लगन से वैज्ञानिक शोधकार्यों में संलग्न हो गए। शीघ्र ही संपूर्ण विश्व, उनकी वैज्ञानिक प्रतिभा को देखकर चकित रह गया।

रमण के अनुसंधान का विषय 'प्रकाश' था। यह 'प्रकाश भौतिकी' के क्षेत्र के अंतर्गत आता है। उनका पहला शोध समुद्र के पानी के नीले रंग पर था। उन्होंने सिद्धांत दिया कि तरल और पारदर्शी पदार्थों में प्रकाश का रंग विकीर्ण होकर अपना स्वभाव परिवर्तन कर लेता है। प्रकाश का यह रंग परिवर्तन का सिद्धांत 'रमन प्रभाव' के नाम से जाना जाता है। रमण के इसी शोध पर उन्हें स्वीडिश एकेडेमी का प्रतिष्ठित नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ था।

रमण ने ध्वनि-विज्ञान संबंधी भी कुछ प्रयोग किए। उन्होंने कोलाहल और संगीत के स्वरों का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया।

रमण भारत में वैज्ञानिक संस्थानों और शोध केंद्रों के संस्थापक के रूप में भी देखे जाते हैं। यहाँ तक कि उन्होंने अपने खर्चे से भी देश में कई प्रयोगशालाएँ स्थापित की।

अध्यापन कार्य से सेवा निवृत्त होने के पश्चात वे विज्ञान की प्रतिष्ठित संस्था 'इंडियन इन्स्टीटयूट ऑफ साइंस' के अध्यक्ष बनाए गए।

बचपन में रमण को धार्मिक ग्रंथ पढ़ने का बड़ा शौक था। उन्होंने छोटी सी उम्र में ही पूरी रामायण और महाभारत पढ़ डाली। इसके अतिरिक्त वे अन्य धार्मिक ग्रंथों को भी बड़े चाव से पढ़ते थे। प्रेंसीडेंसी कालेज में एक बार ऐतिहासिक काव्य निबंध प्रतियोगिता का आयोजन किया गया था। रमण उस समय वहाँ बी. ए. के छात्र थे। रमण ने भी इस प्रतियोगिता में भाग लिया। उन्हें प्रथम परितोषिक मिला। इससे रमण के उत्कृष्ट धार्मिक ज्ञान का पता चलता है।

देश-विदेश में रमण के वैज्ञानिक कार्यों की धूम मच गई थी। संपूर्ण विश्व के लोग उनके प्रयासों की मुक्तकंठ से प्रशंसा करने लगे थे। 1922 ईसवी में रमण को डी. एससी. की उपाधि प्रदान की गई। लंदन की रॉयल सोसाईटी ने भी उन्हें अपना 'फैलो' मनोनीत किया। इसके अलावा उन्हें और भी कई पुरस्कारों से सम्मानित किया गया था जिसमें प्रेंकलिन पदक, लेलिन शांति पुरस्कार आदि कुछ प्रमुख हैं।

इतने ऊँचे पदों व प्रतिष्ठा के मालिक होने के बावजूद रमण में अहं का भाव लेशमात्र भी मौजूद नहीं था। आप विनम्रता, सादगी, सरलता व सहजता के प्रतिमूर्ति थे। आपकी दिनचर्या आजीवन संयमित और नियमित रही। सच्चे अर्थों में आप विज्ञान साधना में रत एक निस्पृह तपस्वी थे। आपके प्रयासों से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत को जो गौरव प्राप्त हुआ इस हेतु समस्त भारतीय जन आपके कृतज्ञ हैं।

□□□

डॉ. बीरबल साहनी

डॉ. बीरबल साहनी का जन्म 14 नवंबर 1891 ई. को पंजाब के शाहपुर जिले के 'भेड़ा' नामक एक छोटे से कस्बे में हुआ था। डॉ. साहनी एक प्रसिद्ध वनस्पतिशास्त्री थे। वनस्पति विज्ञान के अलावा उन्होंने पुरावनस्पति विज्ञान और भूविज्ञान के क्षेत्र में भी अनेक रूपों में अपना मौलिक योगदान दिया। देखा जाए तो डॉ. बीरबल साहनी प्राचीन वनस्पतियों पर अनुसंधान करने वाले भारत के प्रथम वैज्ञानिक थे। उन्होंने भारतीय गोंडवाना पौधे पर अध्ययन कर कई उल्लेखनीय खोजें की। उन्होंने अपने प्रयोगों में नये जीवाश्म पौधे तथा अनेक पुरानी प्रजातियों और उनकी भौगोलिक श्रेणी का वर्णन किया है।

बचपन से ही बालक साहनी प्रकृति के रहस्यों को जानने के लिए उत्सुक रहते थे। सौभाग्य से इनके पिता प्रो. रुचि राम साहनी भी एक प्रकृति प्रेमी थे। इसके साथ ही विज्ञान के अच्छे ज्ञाता भी थे। आदर्श माता और विज्ञान के मर्मज्ञ पिता के संरक्षण में उनमें विज्ञान एवं संस्कृति के प्रति लगाव पैदा होना स्वाभाविक ही था।

बीरबल साहनी का जन्मस्थान, भेड़ा गाँव सेंधा नाम पहाड़ों के

बिल्कुल समीप ही था। अतः बालक साहनी का लालन-पालन प्रकृति की मनोरम गोद में ही हुआ। यही वजह थी कि बचपन से ही वे पहाड़ों व प्रकृति के प्रति ज़्यादा आकर्षित रहने लगे।

बालक बीरबल को बचपन से ही एक बात जो बार-बार उसके मन को कुरेद रही थी वह यह कि पेड़-पौधे जब जमीन के नीचे दब जाते हैं तो आखिर पत्थर में कैसे बदल जाते हैं? संभवतः इसी उत्सुकता ने उन्हें आगे चलकर पुरावनस्पति विज्ञान के क्षेत्र में अनुसंधान करने के लिए प्रेरित किया।

बीरबल की आरंभिक शिक्षा-दीक्षा लाहौर के सेंट्रल मॉडल स्कूल में हुई। स्कूली शिक्षा समाप्त करने के बाद उन्होंने अपने कॉलेज की शिक्षा गर्वनमेंट लाहौर कॉलेज में प्राप्त की। यहाँ बीरबल को शिवराम कश्यप जैसे सुयोग्य अध्यापक का सान्निध्य प्राप्त हुआ। प्रो. कश्यप स्वयं भी एक प्रतिष्ठित वनस्पतिशास्त्री थे। गर्वनमेंट लाहौर कॉलेज से बी-एससी की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात बीरबल साहनी वनस्पतिशास्त्र में उच्च अध्ययन के लिए इंगलेंड गए। वहां उन्होंने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के इम्येनुअल कॉलेज में वनस्पतिशास्त्र का गंभीर अध्ययन किया।

भूकंप एवं ज्वालामुखी जैसी प्राकृतिक आपदाओं के कारण बड़े-बड़े वन जब पृथ्वी के नीचे दब जाते हैं तो वे पत्थर के कोयले में परिवर्तित हो जाते हैं। ऐसे चट्टानों के बीच में कभी-कभी जो प्राचीन छाप या अवशेष मिलते हैं, उसे ही जीवाश्म (फॉसिल) कहा जाता है।

डॉ. साहनी ने लंदनविश्वविद्यालय में अपनी पढ़ाई के क्रम में ऐसे ही जीवाश्मों पर अनुसंधान कार्य किया। उनका यह कार्य बेहद रोचक एवं स्तरीय पाया गया। उन्हें इस मौलिक अनुसंधान पर

डी-एससी की उपाधि प्रदान की गई।

डॉ. साहनी को शुरू से ही अनेक लब्धप्रतिष्ठ वनस्पतिशास्त्रियों के संपर्क में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जर्मनी के सुप्रसिद्ध वनस्पतिशास्त्री प्रो. के. गोबेल ऐसे ही एक ख्यातिप्राप्त विद्वान थे। प्रो. गोबेल के सान्निध्य ने डॉ. साहनी के शोधकार्यों में मानों जान ही फूंक दी। उन्होंने कई मौलिक शोध कार्य संपन्न किए। इसमें उन्हें आशातीत सफलता एवं अप्रत्याशित ख्याति मिली। वे अपने उत्कृष्ट वैज्ञानिक कार्यों के लिए पूरे विश्व में विख्यात हो गए।

डॉ. साहनी को 1936 ईसवी में लंदन की रायल सोसाइटी ने अपना 'फैलो' मनोनीत किया। यह किसी भी वैज्ञानिक के लिए एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि मानी जाती है।

डॉ. साहनी ने स्वदेश को ही अपना कर्मक्षेत्र बनाया। वे यहाँ वनस्पतिशास्त्र के विकास के लिए निरंतर कार्य करते रहे। आपने लखनऊ विश्वविद्यालय में प्राध्यापक पद पर रहते हुए वनस्पतिशास्त्र के शोधकर्त्ताओं एवं छात्रों को नई दिशा एवं दृष्टि प्रदान की।

डॉ. साहनी के अथक प्रयासों से लखनऊ विश्वविद्यालय की वनस्पति-प्रयोगशाला सभी तरह के अन्वेषण संबंधी उपकरणों से सुसज्जित थे।

अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि के असाधारण प्रतिभा वाले इस व्यक्तित्व का निधन मात्र 58 वर्ष की आयु में ही सन् 1949 में हो गया।

भारत सरकार ने इनकी स्मृति में बीरबल साहनी पुरस्कार की स्थापना की है। यह पुरस्कार विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में उल्लेखनीय कार्य करने वाले वैज्ञानिकों को दिया जाता है।

इस श्रेष्ठतम भारतीय प्रतिभा को शतशः नमन।

□□□

डॉ. मेघनाथ साहा

डॉ. मेघनाथ साहा एक प्रसिद्ध भौतिकी वेत्ता थे। वे भौतिकशास्त्र में अपने कई महत्वपूर्ण नूतन अनुसंधानों के कारण जाने जाते हैं। उनकी वैज्ञानिक प्रतिभा की ख्याति देश में ही नहीं बल्कि विदेशों में भी फैली थी।

मेघनाथ साहा का जन्म 9 अक्तूबर 1893 ईसवी को ढाका जिले के सेवरा ताली नामक गाँव में हुआ था। यह क्षेत्र अब बांग्लादेश में पड़ता है।

उन दिनों यह क्षेत्र आर्थिक -शैक्षिक आदि दृष्टि से अत्यंत पिछड़ा हुआ था। गाँव के अधिकांश लोग निर्धन थे और खेती-बाड़ी करके जैसे-तैसे अपनी जीविका चलाते थे। शिक्षा-केंद्र के नाम पर यहाँ केवल एक प्राथमिक विद्यालय ही था। पढ़ने लिखने की कोई समुचित व्यवस्था नहीं होने के कारण यहाँ के लोग शैक्षिक दृष्टि से भी पिछड़े थे।

कहते हैं कि प्रतिभा आगे बढ़ने के लिए अपना रास्ता स्वयं ढूंढ लेती है। अतः घर की आर्थिक दशा अच्छी नहीं होने के बावजूद बालक साहा विपरीत परिस्थितियों का मुकाबला करते हुए बड़े ही धैर्य एवं

लगन के साथ निरंतर आगे बढ़ते ही रहे। वे 'मिडिल' की परीक्षा में अपने जिले में प्रथम आए। आगे की पढ़ाई को ज़ारी रखते हुए उन्होंने ढाका के कॉलेजिएट स्कूल में दाखिला लिया। यहाँ उनका संपर्क सुयोग्य अध्यापकों एवं कई प्रतिभावान छात्रों से हुआ। साहा इंटर की परीक्षा के बाद कलकत्ता चले आए और प्रतिष्ठित प्रेसीडेंसी कॉलेज में भर्ती हुए। ईश्वर से यहाँ भी उनको भरपूर सहयोग मिला। यहाँ युवा साहा को डॉ. प्रफुल्ल चंद्र राय एवं डॉ. जगदीशचंद्र बसु जैसे प्रख्यात वैज्ञानिक, अध्यापक के रूप में मिले। छात्र साहा को इनसे काफी प्रेरणा मिली। इस कॉलेज में रहकर उन्होंने अपने समय का भरपूर सदुपयोग किया। वे रसायन एवं भौतिकी जैसे क्लिष्ट विषयों में पारंगत हो गए। आगे चलकर इन्हीं विषयों में उन्होंने कई मौलिक शोध किए।

डॉ.साहा ने सांख्यिकी यांत्रिकी, परमाण्विक व आण्विक वर्णक्रमदर्शी आदि के साथ प्रवर वायुमंडल भौतिकी, नाभिकीय वर्गीकरण आदि के क्षेत्र में कई मौलिक अनुसंधान किए। उच्च तापमान आयनीकरण एवं तारकीय वायुमंडल तथा वर्णक्रमीय के क्षेत्र में डॉ. साहा अपने उल्लेखनीय योगदान के कारण विशेष रूप से चर्चित रहे हैं। राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक जगत में आपके कार्यों की भूरि-भूरि प्रशंसा हुई। और आपके योगदानों को मानव सभ्यता के कल्याण के लिए एक उल्लेखनीय प्रयास के रूप में स्वीकार किया गया।

डॉ. साहा को देश-विदेश में अनेक सम्मान मिले। उन्हें सन् 1927 में लंदन की प्रतिष्ठित संस्था 'रायल सोसाईटी' ने अपना 'फैलो' मनोनीत किया। इटली के वैज्ञानिकों ने भी उनके कार्यों की प्रशंसा की थी। उन्हें वहाँ की सरकार से 'अन्तर्राष्ट्रीय भौतिक विज्ञान कांग्रेस में शामिल होने का न्यौता मिला। बंगाल की रायल एशियाटिक

सोसाईटी ने भी उन्हें अपना 'फैलो' निर्वाचित किया।

डॉ. साहा की असाधारण वैज्ञानिक प्रतिभा को देखते हुए भारत सरकार ने उन्हें 'न्यूक्लियर फिजिक्स संस्थान' की स्थापना की ज़िम्मेदारी सौंपी।

डॉ. साहा युवाओं में विज्ञान के साथ-साथ अपनी संस्कृति के प्रचार-प्रसार के लिए शुरू से ही कटिबद्ध थे। सन् 1935 में उन्होंने 'साइंस एंड कल्चर' नाम से एक शोध पत्रिका का संपादन भी शुरू किया। उनके प्रयत्नों से यह पत्रिका युवा एवं वैज्ञानिक जगत में काफी चर्चित रही।

डॉ. साहा का निधन 19 फरवरी 1956 को अचानक हृदय गति रुक जाने के कारण हो गया। निःसंदेह डॉ. मेघनाथ साहा का निधन हमारे लिए एक अपूरणीय क्षति है।

☐

डॉ. सर शान्ति स्वरूप भटनागर

डॉ. शांति स्वरूप भटनागर भारत के एक महान सपूत थे। देश के विकास और समृद्धि के लिए किए गए उनके अथक प्रयासों की सूची काफी लंबी है। अपनी प्रतिभा, परिश्रम एवं अदम्य उत्साह से उन्होंने देश का तो नाम रोशन किया ही साथ ही मानवता के कल्याण के लिए भी यथेष्ठ प्रयास किए।

शांति स्वरूप भटनागर का जन्म 21 फरवरी सन् 1894 को शाहपुर जिले के भेड़ा गाँव में हुआ। पंजाब का यह गाँव, एक तरह से देखा जाए तो अत्यंत भाग्यशाली है क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त वैज्ञानिक डॉ. भटनागर के अलावा यह प्रसिद्ध वनस्पतिशास्त्री डॉ. बीरबल साहनी का भी जन्म स्थान है।

शांतिस्वरूप की उम्र यही कोई आठ माह की रही होगी कि तभी उनके सिर से पिता का साया उठ गया। शांतिस्वरूप का लालन-पालन उनकी माँ ने ही किया।

शांति स्वरूप की आरंभिक शिक्षा सिकंदराबाद में उनके नाना श्री प्यारेलाल के यहाँ हुई। आगे की पढ़ाई के लिए उन्हें यहीं से लाहौर भेजा गया। लाहौर में इनकी शिक्षा-दीक्षा लाला रघुनाथ सहाय के

संरक्षण में संपन्न हुई। लाला रघुनाथ सहाय एक सच्चे व नेकदिल इंसान थे। वे बालक शांति स्वरूप के पिता के निकटतम मित्रों में से एक थे।

बालक शांति स्वरूप बचपन से ही जिज्ञासु प्रवृत्ति के थे। वे अपनी कक्षा में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेते थे। वे इतने कुशाग्र बुद्धि के थे कि उनके जटिल प्रश्नों की झड़ी से कक्षा के अध्यापक भी कई बार उन पर झुलझुला उठते थे। अध्यापक, जिज्ञासु शांति स्वरूप के प्रश्नों को कक्षा की गति में बाधक मानते थे। साथ ही वे यह भी सोचते थे कि शांति स्वरूप व्यर्थ में बाल की खाल निकालता है।

पर बालक शांति स्वरूप के प्रति अध्यापकों का यह दृष्टिकोण अधिक दिनों तक बना नहीं रह सका। वे इस छात्र के प्रति शीघ्र ही नरम पड़ गए जब शांति स्वरूप अपनी प्रतिभा प्रमाणित करते हुए आठवीं कक्षा की परीक्षा में सर्वप्रथम आए। उन्हें सरकार की तरफ से छात्रवृत्ति प्रदान किया गया। अब वे अपने अध्यापकों के चहेते बन गए थे।

शांति स्वरूप वैसे तो सभी विषयों में अच्छे थे, परंतु विज्ञान विषय उन्हें विशेष प्रिय था। उनका यह विज्ञान प्रेम कॉलेज जाकर और अधिक निखरने लगा। लाहौर के दयालसिंह कॉलेज में उनकी भेंट प्रख्यात वनस्पतिशास्त्री प्रो. जगदीश चंद्र बोस से हुई। डॉ. बोस के प्रेरणा से शांतिस्वरूप विज्ञान की गतिविधियों में और अधिक रूचि लेने लग गए। सच्चे अर्थो में यह डॉ. बोस की ही प्रेरणा थी कि लाहौर के दयालसिंह कॉलेज का यह छात्र एक दिन अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का वैज्ञानिक बन गया।

लंदन से डी.एससी. की उपाधि ग्रहण करने के पश्चात डॉ. भटनागर स्वदेश लौट आए। यहाँ आकर उन्होंने एक प्रतिष्ठित

विश्वविद्यालय में भौतिकी अध्यापन का कार्य शुरू किया।

प्राध्यापक भटनागर ने भौतिक रसायनशास्त्र (Physical Chemistry), चुंबकीय रसायन शास्त्र और 'इमल्सन के क्षेत्र में कई बहुमूल्य शोध कार्य किए। उनके कुछ वैज्ञानिक शोधों का उपयोग देश में उद्योग-धन्धे की स्थापना में भी किया गया। मोम को गंधहीन बनाने, मिट्टी तेल शोधन एवं पेट्रोलियम के अपशिष्ट पदार्थो के समुचित उपयोग हेतु उनके कई अनुसंधान, उद्योग जगत के लिए बेहद लाभकारी सिद्ध हुए।

विज्ञान की सेवा करने के अतिरिक्त डॉ. भटनागर को उर्दू कविताओं का भी शौक था। अपने कॉलेज के दिनों में वे अपनी उम्दा शायरी के लिए मशहूर थे। उन्हें हास्य रस की शायरी करने में महारत हासिल था।

भारत सरकार ने उनकी इस असाधारण प्रतिभा एवं उच्च संगठनात्मक गुणों को देखते हुए उन्हें पूरे देश में विज्ञान के प्रचार-प्रसार हेतु वैज्ञानिक प्रयोगशालाएँ स्थापित करने की ज़िम्मेदारी सौंपी। उनके द्वारा स्थापित अनुसंधानशालाओं में सभी प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध थी।

देश की सरकार ने उन्हें वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद (सी.एस.आई.आर.) के निदेशक के पद पर नियुक्त किया। यह अनुसंधान परिषद देश की वैज्ञानिक और औद्योगिक समस्याओं को हल करने की दिशा एक रचनात्मक भूमिका अदा करती है।

डॉ. भटनागर को कई अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कारों से भी विभूषित किया गया है। वे विदेशी सरकार द्वारा विज्ञान की प्रतिष्ठित संस्था 'केमिकल सोसाइटी व रायल सोसाइटी के 'फैलो' के रूप में भी मनोनीत हुए। स्वदेशी सरकार ने उन्हें सन् 1964 में पद्मविभूषण

अलंकरण से सम्मानित किया।

इस महान वैज्ञानिक का देहावसान 01 जनवरी 1955 को हुआ। उनकी इस हठात मृत्यु से देश ही नहीं बल्कि संपूर्ण विश्व शोकाकुल हो उठा। इस महान वैज्ञानिक की मृत्यु से स्वतंत्र भारत के विकास की गति को एक प्रबल धक्का पहुँचा।

उनके महत्वपूर्ण योगदानों को देखते हुए उनकी स्मृति में एक पुरस्कार की स्थापना भी की गई है। यह पुरस्कार विज्ञान के क्षेत्र में मौलिक अनुसंधान कार्य हेतु प्रदान किया जाता है। यह पुरस्कार वैज्ञानिक एवं अनुसंधान परिषद द्वारा स्थापित किया गया है। डॉ. शांति स्वरूप भटनागर पुरस्कार विज्ञान के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण एवं सम्मानीय पुरस्कार माना जाता है।

□□□

डॉ. सत्येंद्र नाथ बोस

डॉ. सत्येंद्र नाथ बोस एक प्रसिद्ध भौतिकविद थे। वैज्ञानिक जगत में बोस की तुलना जर्मनी के प्रख्यात वैज्ञानिक अल्बर्ट आइन्सटीन से की जाती है। स्वयं आइन्स्टीन भी उनकी प्रतिभा के कायल थे। एक बार डॉ. बोस ने 'प्लैंक का नियम तथा प्रकाश क्वांटम परिकल्पना' विषयक अपना एक शोध लेख समीक्षा के लिए आइन्स्टीन को भेजा। आइन्स्टीन युवा वैज्ञानिक के इस असाधारण लेख को पढ़कर दंग रह गए। आइन्स्टीन बोस के इस लेख से इतना अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने इसका जर्मन में अनुवाद कर छपने के लिए एक प्रतिष्ठित जर्नल में भेज दिया। वैज्ञानिक डॉ. बोस के इस लेख से पूरे विश्व में सनसनी फैल गई। डॉ. सत्येंद्र नाथ बोस की गिनती अब अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के वैज्ञानिकों में की जाने लगी।

सत्येंद्र नाम बोस का जन्म 01 जनवरी 1894 ई. को कलकत्ता में हुआ था। उनकी माँ आमोदिनी देवी धार्मिक विचारों वाली एक सुसंस्कृत महिला थी। पिता सुरेंद्र नाथ बोस रेलवे विभाग में एक अधिकारी थे।

सत्येंद्र नाथ बोस की आरंभिक शिक्षा कलकत्ता के हिंदू स्कूल में हुई। प्रारंभिक शिक्षा समाप्त करने के बाद उन्होंने आगे की पढ़ाई के लिए कलकत्ता के ही प्रसिद्ध प्रेसीडेंसी कॉलेज में दाखिला लिया। वे स्कूल और कॉलेज की सभी परीक्षाओं में शुरू से ही अव्वल आते रहे।

कलकत्ता विश्वविद्यालय के तत्कालीन उप कुलपति व प्रख्यात विद्वान डॉ. आशुतोष मुखर्जी ने बोस की इस असाधारण प्रतिभा को पहचान लिया था। अतः बोस की कॉलेज की पढ़ाई खत्म होते ही बिना किसी विलंब के डॉ. मुखर्जी ने उन्हें विश्वविद्यालय में भौतिक विज्ञान के प्राध्यापक के रूप में नियुक्त कर लिया।

कलकत्ता विश्वविद्यालय में प्राध्यापक के रूप में कार्य करते हुए बोस निरंतर नए-नए अनुसंधान कार्यों में संलग्न रहे। प्रख्यात भौतिकविद् डॉ. मेघनाथ साहा भी यहीं अध्यापन कार्य में लगे थे। बोस को एक सहकर्मी के रूप में मेघनाथ साहा का सान्निध्य मिलना, विज्ञान के हित में साबित हुआ। उनमें परस्पर विचारों के आदान-प्रदान होते रहने से भारत में भौतिक अनुसंधान को निःसंदेह एक सार्थक दिशा मिली। देश के ही नहीं बल्कि विदेशी विद्वानों ने भी इन दोनों भारतीय युवा वैज्ञानिकों के कार्य को काफी सराहा है।

डॉ. सत्येंद्र नाथ बोस ने सांख्यिकी यांत्रिकी, आयन मंडलीय विद्युत चुम्बकत्व, क्ष-किरण केलास विज्ञान और ताप संदीप्ति के क्षेत्र में अनेक मौलिक योगदान दिए हैं। उन्होंने आइन्स्टीन के प्रसिद्ध सिद्धांत 'यूनीफाईड फील्ड थ्योरी' के बारे में भी कई महत्वपूर्ण संशोधनों के सुझाव दिए। डॉ. बोस के ये सुझाव हालांकि पहले तो मान्यता प्राप्त नहीं हुए परंतु आगे चलकर वैज्ञानिकों ने जब इसे परखा तो वे दंग रह गए। सचमुच डॉ. बोस के सुझाव अत्यंत ही तार्किक और मौलिक थे। पूरे विश्व के विद्वानों ने उनके इस युक्तिपूर्ण

सुझावों की मुक्तकंठ से प्रशंसा की।

डॉ. बोस स्वभाव से बड़े ही विनम्र थे। बच्चों से उन्हें ख़ास लगाव था। विज्ञान की पेंचिदिगियों के अलावा उन्हें कला, संगीत, एवं साहित्य के प्रति भी अगाध प्रेम था। वे बहुभाषाविद् थे। बंगला, हिंदी, संस्कृत व अंग्रेज़ी के अलावा वे फ्रेंच, लैटिन आदि भाषाओं के भी अच्छे ज्ञाता थे। डॉ. बोस शिक्षा में स्वदेशी भाषाओं के प्रयोग के पक्षधर थे। उनके अनुसार बच्चों को उनकी प्रारंभिक शिक्षा उनकी ही मातृभाषा में दी जानी चाहिए।

डॉ. सत्येंद्र नाथ बोस भारत में विज्ञान के प्रचार-प्रसार के लिए आजीवन संलग्न रहे। उनकी असाधारण प्रतिभा एवं विज्ञान प्रेम को देखते हुए उन्हें सन् 1952 से 1958 तक राज्य सभा का सदस्य मनोनीत किया गया। 15 अगस्त 1958 को भारत सरकार ने उन्हें 'राष्ट्रीय आचार्य' के रूप में भी मनोनीत किया। जीवन के अंतिम वर्षों में वे विश्वभारती विश्व विद्यालय के उपकुलपति पद पर भी रहे। इस पद पर कार्य करते हुए वे इसके संस्थापक गुरुदेव रवींद्र नाथ ठाकुर के सपनों को साकार करने की दिशा में लगे रहे।

04 फरवरी 1974 ई. में इनका देहांत हुआ। उनकी मृत्यु से निःसंदेह हमने एक महान विद्वान, कलामर्मज्ञ एवं प्रख्यात वैज्ञानिक खोया है।

हमारी युवा पीढ़ी के लिए उनके पद्चिह्न आज भी अनुकरणीय हैं।

□□□

डॉ. होमी जहाँगीर भाभा

डॉ. होमी जहाँगीर भाभा एक बहुविध प्रतिभा संपन्न व्यक्ति थे। वे एक प्रख्यात वैज्ञानिक तो थे ही साथ ही एक उत्कृष्ट कलाकार भी माने जाते थे। 31 वर्ष की आयु में ही आपकी असाधारण वैज्ञानिक उपलब्धि को देखते हुए ब्रिटेन सरकार ने आपको एफ.आर.एस. सम्मान से विभूषित किया था। वहीं दूसरी ओर आपके व्यक्तित्व में उनके उत्कृष्ट कलात्मक गुण भी मौजूद थे। विश्व के अनेक प्रसिद्ध कला मर्मज्ञ आपके इन गुणों के कायल थे। इंग्लैंड के एक प्रसिद्ध कला समीक्षक रॉजर फ्राई ने आपके द्वारा बनाए गए चित्रों की मुक्तकंठ से प्रशंसा की थी। उनके अनुसार यदि भाभा चित्रकला के प्रति समर्पण भाव से लगे रहें तो उनमें एक प्रख्यात चित्रकार बनने के सभी गुण मौजूद हैं। रॉजर फ्राई इंग्लैंड के एक सुप्रसिद्ध कला पारखी थे और चित्रकला में भाववादी चित्रों के प्रयोग के सूत्रधार थे।

ऐसी सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी होमी जहाँगीर भाभा का जन्म 30 अक्तूबर सन् 1909 को बंबई के एक धनाढ्य पारसी परिवार में हुआ था। आपके पितामह डॉ. हुरमुस जी जहाँगीर भाभा एक उदार शिक्षावादी के रूप में जाने जाते थे। आपके पिता बंबई के नामी-गिरामी

बैरिस्टरों में से एक थे। आपकी माता धार्मिक विचारों व प्राचीन परंपराओं को मानने वाली एक गृहिणी थी। विरासत में मिले इस संभ्रांत एवं सुसंस्कृत पारिवारिक वातावरण ने बालक भामा के व्यक्तित्व के विकास में एक अहम भूमिका अदा की। भामा बचपन से ही प्राचीन पारसी परंपराओं एवं भारतीय संस्कृति की बारीकियों से बखूबी अवगत थे।

चूँकि भामा औद्योगिक घराने से संबंधित थे अतः उनकी शिक्षा-दीक्षा में कभी कहीं कोई दिक्कत नहीं आई। भामा अपनी स्कूली शिक्षा के समाप्त होने पर आगे अध्ययन हेतु इंग्लैंड के कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में भेजे गए। उन दिनों कैम्ब्रिज गणित एवं विज्ञान विषयों के अध्ययन के लिए सबसे अच्छे विश्वविद्यालय के रूप में माना जाता था। कैम्ब्रिज में भामा ने वैसे तो इंजीनियरिंग की अपनी पढ़ाई पूरी की, पर उनका मन बचपन से ही भौतिक विज्ञान के प्रति झुका था। अतः इंजनीयरिंग की परीक्षा उत्तीर्ण होने के तुरंत बाद ही कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से ही उन्होंने सैद्धांतिक भौतिकी का भी अध्ययन किया।

डॉ. भामा ने भारत में विज्ञान की प्रगति में अपना बौद्धिक योगदान तो दिया ही है पर साथ ही वे समय-समय पर वैज्ञानिक प्रयोगों के लिए आर्थिक संसाधन भी उपलब्ध करवाते रहे।

डॉ. होमी जहाँगीर भामा एक महान परमाणु वैज्ञानिक थे। वे नाभिकीय ऊर्जा से ईंधन और बिजली के उत्पादन के प्रमुख समर्थक थे। डॉ. भामा देश के आण्विक ऊर्जा आयोग के अध्यक्ष बनाए गए। उन्होंने सभी प्रकार की सुविधाओं से संपन्न एक परमाणु अनुसंधान केंद्र की रूपरेखा तैयार की। ट्रॉम्बे बंबई में स्थापित यह संस्थान आगे चलकर इसी महान वैज्ञानिक की स्मृति में 'भामा परमाणु अनुसंधान केंद्र' के नाम से जाना गया। यह देश का एक महत्वपूर्ण शोध संस्थान है।

द्वितीय विश्वयुद्ध में अमेरिका द्वारा जापान पर आण्विक बम के प्रयोगों से हुए भीषण नरसंहार को देखकर भामा अत्यंत विचलित हो उठे। वे इसके दुरूपयोग से दुःखी थे। वे आण्विक ऊर्जा के शांतिपूर्ण उपयोग के पक्षधर थे। विनाशकारी कार्यों में इस विज्ञान के दुरूपयोग को रोकने के लिए उन्होंने संपूर्ण विश्व के वैज्ञानिकों एवं शोधकर्ताओं से अपील की कि इसका उपयोग भविष्य में विशुद्ध रूप से मानवता के कल्याण के हेतु ही किए जाएँ।

भामा भारत को एक परमाणु ऊर्जा संपन्न देश के रूप में देखना चाहते थे। उन्होंने इस हेतु भारत सरकार का प्रतिनिधित्व करते हुए कई विकसित देशों जैसे– संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, कनाडा, फ्रांस आदि देशों के साथ आपसी सहयोग के लिए कई आधिकारिक अनुबंध भी किए। भामा के द्वारा सच्चे मन से मानव जाति के प्रति किए जा रहे इन कार्यों को देखते हुए उन्हें कई महत्वपूर्ण राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय पदों पर सुशोभित किया गया। वे अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा अभिकरण के गर्वनर नियुक्त किए गए। वे कुछ समय तक संयुक्त राष्ट्र महासचित के वैज्ञानिक सलाहकार समिति के सदस्य भी रहे थे।

भामा एक उत्कृष्ट वैज्ञानिक थे। उन्होंने अंतरिक्ष किरण भौतिकी, नाभिकीय भौतिकी और मेसॉन सिद्धांत पर कई मौलिक अनुसंधान किए। उनके सैकड़ों शोध प्रबंध प्रकाशित हैं। भारत के प्रधानमंत्री श्री जवाहर लाल नेहरू प्रतिभा के धनी भामा के इस व्यक्तित्व से अत्यंत प्रभावित थे। श्री नेहरू ने उन्हें अपना वैज्ञानिक सलाहकार नियुक्त कर लिया। कहते हैं कि भले लोग अल्पायु होते हैं। यहाँ भी कुछ ऐसा ही हुआ। तब जबकि भामा भारत को एक प्रभुत्वसंपन्न देश के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय मानचित्र पर स्थापित करने के अपने प्रयासों में लगे

थे कि तभी 24 जनवरी 1966 के दिन विमान यात्रा करते समय उनका विमान दुर्घटनाग्रस्त हो गया। इस दुर्घटना में भामा की मृत्यु हो गई। उनके इस असामयिक निधन पर पूरा देश शोक संतप्त हो उठा। उनकी आकस्मिक मृत्यु से देश को जो अपूरणीय क्षति हुई, देखा जाए तो उसकी भरपाई अब भी कठिन ही है।

डॉ. भामा अपने देश-प्रेम की भावना के लिए आज भी हमारे मध्य वंदनीय हैं।

□□□

डॉ. मोक्षगुंडम विश्वेश्वरैया

डॉ. विश्वेश्वरैया एक महान इंजीनियर थे। भारत के विकास एवं निर्माण की दृष्टि से यदि देखा जाए तो देश के प्रति इनके योगदानों की सूची बड़ी लंबी है। सरलता, सहजता एवं विनम्रता की प्रतिमूर्ति डॉ. विश्वेश्वरैया सच्चे अर्थों में एक कर्मयोगी थे। देश को ऐसे महान सपूत पर आज भी गर्व है।

डॉ. विश्वेश्वरैया का जन्म 15 सितंबर 1861 ईसवी को तत्कालीन मैसूर राज्य के मदनहल्ली नामक गाँव में हुआ था। अब यह कर्नाटक राज्य के अंतर्गत आता है।

बालक विश्वेश्वरैया बचपन से ही पढ़ने में अत्यंत मेधावी थे। परंतु पिता की आर्थिक तंगी के कारण उनकी पढ़ाई-लिखाई में बीच-बीच में कई व्यवधान आते रहते थे। कहते हैं कि जहाँ चाह है वहाँ राह भी। विश्वेश्वरैया शायद इस बात को अपने मन में गाँठ बाँधे थे। आखिर उन्हें एक दिन प्रख्यात वैज्ञानिक जो बनना था। तमाम संकटों के बावजूद वे कभी भी विचलित नहीं हुए। धैर्य एवं लगन के साथ जैसे-तैसे उन्होंने अपनी पढ़ाई ज़ारी रखी। हाईस्कूल की परीक्षा उन्होंने बैंगलोर से पास की। इस परीक्षा में वे अव्वल आए थे। उनकी

अद्भुत प्रतिभा को देखते हुए उनके एक अध्यापक ने उनका दाखिला पूना के साइंस कॉलेज में करा दिया। संयोग से यहाँ विश्वेश्वरैया को प्रतिभा छात्रवृत्ति भी मिलने लगी। उन्होंने यहाँ से इंजीनियरिंग की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। सन् 1884 में सौभाग्य से उन्हें बंबई सरकार में सहायक इंजीनियर के पद पर एक नौकरी भी मिल गई।

अपनी आर्थिक चिंताओं से मुक्त होकर विश्वेश्वरैया बड़े मनोयोग से काम करने लगे। पक्की लगन और अदम्य उत्साह से काम करने की उनकी शैली ने उन्हें शीघ्र ही लोकप्रिय बना दिया। इंजीनियरिंग विभाग में रहते हुए उन्होंने जल वितरण एवं निकासी की समुचित व्यवस्था के लिए कई सफल प्रणालियों की खोज़ की और उन्हें अपनाया। अपने इस कार्य से शीर्घ ही वे पूरे देश में चर्चित हो गए।

इंजीनियर विश्वेश्वरैया के देश के विकास एवं निर्माण में कई बहुमूल्य योगदान हैं। तत्कालीन प्रमुख प्राकृतिक आपदा—बाढ़ से निबटने के लिए उन्होंने पूरे देश में कई बड़े-बड़े बाँध बनवाये। साथ ही उन्होंने अपार जलराशि के उचित प्रबंधन में भी अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। ऐसा ही उनका एक प्रसिद्ध कार्य-सक्कर बाँध का निर्माण करवाना था। यह बाँध सिंध प्रांत के रेगिस्तानी क्षेत्र में बनाया गया। उनके इस कठिन प्रयास से शीघ्र ही यह रेगिस्तानी क्षेत्र सिंचाई की सुविधा के कारण फसलों से लहलहा उठा।

कावेरी नदी पर कृष्ण राजसागर बाँध का निर्माण भी उन्होंने ही करवाया था। राज्य में समुचित सिंचाई एवं सस्ती बिजली पैदा करने की दृष्टि से यह बाँध अत्यंत उपयोगी समझा जाता है।

इंजीनियर विश्वेश्वरैया के कार्य की शैली निराली थी। वे सभी काम बड़े ही योजनाबद्ध तरीके से करते थे। सरकार व प्रशासन दोनों ही उनसे अत्यंत खुश थे। यही वजह थी कि तत्कालीन मैसूर राज्य की

सरकार ने उन्हें पूरे राज्य में उद्योग-धंधे स्थापित करने की ज़िम्मेदारी सौंपी। भद्रावती का प्रसिद्ध इस्पात कारखाना विश्वेश्वरैया के ही मार्गदर्शन में स्थापित हुआ था।

विश्वेश्वरैया कुछ वर्षों तक मैसूर राज्य के दीवान के पद पर भी कार्यरत रहे। इस पद पर रहकर उन्होंने देश के रचनात्मक विकास एवं निर्माण की तरफ ध्यान केंद्रित रखा। वे सच्चे अर्थों में एक देशभक्त थे। भ्रष्टाचार, जातिवाद एवं भाई भतीजावाद को वे विकास के मार्ग में बाधक मानते थे और इन सब बातों से नफरत करते थे।

डॉ. विश्वेश्वरैया धुन के बड़े ही पक्के और संयमी व्यक्ति थे। यहाँ तक कि दैनिक कार्यों को भी वे योजनाबद्ध तरीके से निपटाते थे। वे एक-एक क्षण का पूरा सदुपयोग करते थे। वे सफलता के इस मूलमंत्र को समझ गए थे कि समय का सदुपयोग करते हुए योजनाबद्ध तरीके से किए गए कार्यों से ही कोई व्यक्ति, समाज या देश महान बन सकता है।

डॉ. विश्वेश्वरैया को अपनी परंपरा एवं संस्कृति में अगाध विश्वास था। वे इसे अपने जीवन की अमूल्य थाती मानते थे। वे आजीवन शाकाहारी रहे। मदिरा सेवन एवं धूम्रपान जैसी गलत आदतों से वे कोसों दूर थे। अहंकार ने तो मानो उन्हें छुआ तक न था। विनम्र स्वभाव के विश्वेश्वरैया का पहनावा उनकी एक ख़ास पहचान बन गई थी। वे हमेशा अपनी परंपरागत स्वदेशी वेश-भूषा में ही रहते थे।

डॉ. विश्वेश्वरैया की मृत्यु 14 अप्रैल सन् 1962 में हुई। उस समय उनकी उम्र 100 वर्ष से भी अधिक थी। अपने इस लंबे जीवन के रहस्य के बारे में कभी पूछे जाने पर उन्होंने कहा था कि "सब काम समय पर करना। मैं समय पर काम करता हूँ। समय पर खाना खाता हूँ। समय पर सोता हूँ। समय पर नियमित रूप से सैर और व्यायाम

करता हूँ। क्रोध से कोसों दूर रहता हूँ। यहीं मेरे अच्छे स्वास्थ्य का रहस्य है।"

हमें डॉ. विश्वेश्वरैया के इस कथन से सीख लेनी चाहिए। वस्तुतः वही व्यक्ति अपने जीवन में सफल होता है जो समय का सम्मान करता है। देखा जाए तो यूँ ही समय को व्यर्थ नष्ट करना किसी एक बड़े पाप से कम नहीं है।

□□□

संदर्भ

- भारतीय वैज्ञानिक, दिलीप मधुकर सालवी
- प्राचीन भारत के वैज्ञानिक कर्णधार, स्वामी सत्यप्रकाश
- संसार के महान गणितज्ञ, गुणाकर मुले
- भारतीय वैज्ञानिक, प्रो. श्याम नारायण कपूर
- विश्व की महान वैज्ञानिक विभूतियाँ, कपिल शर्मा
- भाषा और प्रौद्योगिकी, डॉ. विनोद कुमार प्रसाद
- भारत में शास्त्रों का उद्भव और विकास, डॉ. पंढरीनाथ प्रभु
- प्राचीन भारत में रसायन शास्त्र का विकास, डॉ. सत्यप्रकाश
- हिंदी विश्वकोश, संपादक-नगेंद्र नाथ बसु
- विज्ञान और विज्ञान दर्शन, वीरेंद्र शेखावत
- Dictionary of Scientific Biography, Charles Scribner's Sons, New York.
- Macgraw Hill Encyclopaedia of Science and Technology.
- Encyclopaedia Britannica.
- Encyclopaedia Americana.
- Kotharies Year Book.
- Monorama Year Book 2002.
- Encyclopaedia dictionary of Mathematics, Japan. Vol I, II.
- History of Modern Mathematics, Edited, David R. Rowe and John Mccleary, American Press

□□□